The Infinite
An International Peer Reviewed / Refereed Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 2 | February 2026
ISSN: 3048-9539 (Online)
Website: www.theinfinite.co.in

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के विशेष संदर्भ में स्थायी लोक अदालतों की भूमिका

डॉ० मृदुला राय

सदस्य, स्थायी लोक अदालत, सुल्तानपुर, उत्तरप्रदेश

ARTICLE DETAILS

Research Paper

मुख्य बिंदु: ***स्थायी लोक अदालत, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, लोक उपयोगिता सेवाएँ, सुलह-समझौता, त्वरित न्याय***

सारांश

भारतीय न्याय प्रणाली में बढ़ते वाद-विवाद, न्यायिक विलंब तथा सामान्य नागरिक की न्याय तक पहुँच में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों ने वैकल्पिक विवाद निस्तारण तंत्र की उपयोगिता को अत्यधिक प्रासंगिक बना दिया है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत गठित स्थायी लोक अदालतें इस दिशा में एक प्रभावी एवं संस्थागत समाधान प्रस्तुत करती हैं। इनका उद्देश्य न केवल विवादों का त्वरित निस्तारण करना है, बल्कि सुलह-समझौते के माध्यम से सामाजिक सौहार्द को भी सुदृढ़ करना है। यह शोध-पत्र स्थायी लोक अदालतों की विधिक संरचना, कार्यप्रणाली, भूमिका और सामाजिक प्रासंगिकता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि स्थायी लोक अदालतों को कमजोर करने के बजाय उन्हें अधिक संसाधन, बेहतर अवसंरचना और संस्थागत समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे 'देर से किया गया न्याय न्याय नहीं होता' की अवधारणा को वास्तविक रूप दिया जा सके।

1. भूमिका

न्याय किसी भी संवैधानिक लोकतंत्र का मूल आधार होता है और भारतीय संविधान में न्याय को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप में स्थापित करने की परिकल्पना की गई है। किंतु व्यावहारिक स्तर पर भारतीय न्याय प्रणाली में लंबित मामलों की अत्यधिक संख्या, प्रक्रिया की जटिलता और निर्णय में होने वाला विलंब न्याय की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। आम नागरिक के लिए न्याय प्राप्त करना एक लंबी, खर्चीली और मानसिक रूप से थकाने वाली प्रक्रिया बन गई है। परिणामस्वरूप न्याय का उद्देश्य कई बार केवल सैद्धांतिक रह जाता है।

इसी पृष्ठभूमि में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि पारंपरिक न्यायालयों के साथ-साथ वैकल्पिक विवाद निस्तारण तंत्र को सशक्त करना आवश्यक है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत गठित स्थायी लोक अदालतें इसी

आवश्यकता की उपज हैं। ये अदालतें न्याय के विकेंद्रीकरण, सुलभता और त्वरित समाधान की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करती हैं तथा न्यायिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण पूरक इकाई के रूप में कार्य करती हैं।

2. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 का संवैधानिक आधार

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 का मूल आधार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39-क में निहित है, जो राज्य को यह निर्देश देता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि न्याय प्रणाली समान अवसरों पर आधारित हो और कोई भी व्यक्ति आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय से वंचित न रहे। इस संवैधानिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विधिक सहायता को एक अधिकार के रूप में विकसित किया गया।

इस अधिनियम के माध्यम से राष्ट्रीय, राज्य, जिला और तालुका स्तर पर विधिक सेवा प्राधिकरणों की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करना तथा लोक अदालतों के माध्यम से विवादों का शीघ्र निस्तारण करना है। इसी अधिनियम में बाद में संशोधन द्वारा स्थायी लोक अदालतों की व्यवस्था की गई, जिससे लोक अदालतों की सीमाओं को दूर किया जा सके और उन्हें अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

3. स्थायी लोक अदालत की अवधारणा

स्थायी लोक अदालत की अवधारणा पारंपरिक लोक अदालतों के अनुभव से विकसित हुई है। प्रारंभिक लोक अदालतें केवल उन्हीं मामलों में प्रभावी थीं, जिनमें दोनों पक्ष सुलह-समझौते के लिए सहमत हों। यदि सुलह संभव न हो, तो लोक अदालत के पास विवाद का निर्णय देने का अधिकार नहीं होता था और मामला पुनः नियमित न्यायालय में भेज दिया जाता था।

इस व्यावहारिक समस्या के समाधान हेतु स्थायी लोक अदालतों की स्थापना की गई। इन्हें यह विशिष्ट अधिकार प्रदान किया गया कि वे सुलह की प्रक्रिया विफल होने की स्थिति में विवाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर कर सकती हैं। इस प्रकार स्थायी लोक अदालतें सुलह और निर्णय—दोनों का समन्वित मॉडल प्रस्तुत करती हैं, जो इन्हें पारंपरिक लोक अदालतों से अलग और अधिक प्रभावी बनाता है।

4. स्थायी लोक अदालतों का उद्देश्य

स्थायी लोक अदालतों का प्रमुख उद्देश्य लोक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवादों का त्वरित, सुलभ और किफायती निस्तारण सुनिश्चित करना है। ये अदालतें न्यायालयों पर बढ़ते कार्यभार को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और आम नागरिक को लंबी न्यायिक प्रक्रिया से राहत प्रदान करती हैं। इनका लक्ष्य विवादों को केवल विधिक दृष्टि से हल करना नहीं, बल्कि सामाजिक सौहार्द और आपसी विश्वास को भी बनाए रखना है।

इसके अतिरिक्त स्थायी लोक अदालतों का उद्देश्य न्याय को जनता के निकट लाना, न्यायिक विलंब को कम करना तथा वैकल्पिक विवाद निस्तारण की संस्कृति को प्रोत्साहित करना है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि स्थायी लोक अदालतें न्यायिक सुधारों की दिशा में एक सकारात्मक और व्यावहारिक कदम हैं।

5. स्थायी लोक अदालतों का कार्यक्षेत्र

स्थायी लोक अदालतों का कार्यक्षेत्र मुख्यतः लोक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवादों तक सीमित है। लोक उपयोगिता सेवाएँ वे सेवाएँ होती हैं, जो आम जनजीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती हैं और जिनमें उत्पन्न विवाद समाज के बड़े वर्ग को प्रभावित करते हैं। ऐसे विवादों का शीघ्र समाधान सामाजिक स्थिरता और प्रशासनिक दक्षता के लिए अत्यंत आवश्यक होता है।

इस सीमित लेकिन महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र के कारण स्थायी लोक अदालतें अपने उद्देश्यों पर अधिक केंद्रित होकर कार्य कर पाती हैं। यह विशेषीकरण इन्हें प्रभावी बनाता है और यह सुनिश्चित करता है कि आम नागरिक को दैनिक जीवन से जुड़े विवादों में शीघ्र न्याय प्राप्त हो सके।

स्थायी लोक अदालतों का कार्यक्षेत्र विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-क से 22-ई के अंतर्गत निर्धारित किया गया है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट और सुदृढ़ किया है। इंटरग्लोब एविएशन लिमिटेड बनाम एन. सच्चिदानंद (2011) के प्रकरण में, जो कि पुणे स्थित स्थायी लोक अदालत से उत्पन्न हुआ था, सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से घोषित किया कि लोक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवाद, यदि आपराधिक प्रकृति के न हों, तो स्थायी लोक अदालत के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। न्यायालय ने यह भी कहा कि सुलह की प्रक्रिया असफल होने की स्थिति में स्थायी लोक अदालत को विवाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर करने का विधिक अधिकार प्राप्त है। यह निर्णय स्थायी लोक अदालतों के कार्यक्षेत्र की सीमा और व्यापकता दोनों को परिभाषित करता है।

इसी प्रकार स्टेट ऑफ पंजाब बनाम जलौर सिंह (2008) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने लोक अदालतों की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए कहा कि लोक अदालतें सुलह-समझौते पर आधारित मंच हैं, किंतु यह भी स्वीकार किया कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के अंतर्गत गठित स्थायी लोक अदालतें सामान्य लोक अदालतों से भिन्न हैं, क्योंकि उन्हें सीमित परिस्थितियों में निर्णायक अधिकार भी प्राप्त हैं। इस निर्णय से यह सिद्ध होता है कि स्थायी लोक अदालतों का कार्यक्षेत्र केवल मध्यस्थता तक सीमित नहीं है, बल्कि न्यायिक निस्तारण तक विस्तृत है।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अजीत कुमार (2013) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि बीमा सेवाएँ लोक उपयोगिता सेवाओं की श्रेणी में आती हैं और उनसे उत्पन्न विवाद स्थायी लोक अदालतों के समक्ष विचारणीय हैं। न्यायालय ने यह भी कहा कि कार्यक्षेत्र की व्याख्या संकीर्ण नहीं, बल्कि उद्देश्यपरक होनी चाहिए, ताकि आम नागरिक को त्वरित और प्रभावी न्याय प्राप्त हो सके। यह निर्णय स्थायी लोक अदालतों के कार्यक्षेत्र को व्यावहारिक दृष्टि से विस्तारित करता है।

इसके अतिरिक्त बड़ोदरा म्युनिसिपल कॉरपोरेशन बनाम गुजरात राज्य (2014) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि सार्वजनिक सेवाओं से संबंधित विवादों में लोक अदालतों और स्थायी लोक अदालतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि इनके द्वारा पारित निर्णय या पुरस्कारों को केवल तकनीकी आधारों पर चुनौती नहीं दी जानी

चाहिए, क्योंकि इनका उद्देश्य न्यायिक बोझ को कम करना और सामाजिक सौहार्द को बनाए रखना है। यह निर्णय स्थायी लोक अदालतों के कार्यक्षेत्र को सामाजिक न्याय के व्यापक संदर्भ में स्थापित करता है।

इन सभी न्यायिक उद्घोषणाओं के समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्थायी लोक अदालतों का कार्यक्षेत्र लोक उपयोगिता सेवाओं तक सीमित होते हुए भी अत्यंत प्रभावशाली है। सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह संकेत दिया है कि इन अदालतों की अधिकार-सीमा की संकीर्ण व्याख्या न्यायिक सुधारों की भावना के विपरीत होगी। अतः स्थायी लोक अदालतों के कार्यक्षेत्र को समझते समय उनके उद्देश्य, सामाजिक भूमिका और त्वरित न्याय की अवधारणा को केंद्र में रखा जाना आवश्यक है।

6. सुलह-समझौते की प्रक्रिया का महत्व

स्थायी लोक अदालतों की कार्यप्रणाली का मूल आधार सुलह-समझौता है। यहाँ विवाद समाधान की प्रक्रिया प्रतिद्वंद्वात्मक न होकर सहयोगात्मक होती है, जिसमें पक्षकारों को अपने विवाद का आपसी सहमति से समाधान खोजने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस प्रक्रिया में न्याय केवल निर्णय तक सीमित नहीं रहता, बल्कि संबंधों के संरक्षण पर भी बल दिया जाता है।

सुलह-समझौते के माध्यम से निस्तारित विवादों में पक्षकार निर्णय को स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं, जिससे अपील की संभावना न्यूनतम हो जाती है। इससे न केवल न्यायिक समय और संसाधनों की बचत होती है, बल्कि सामाजिक तनाव भी कम होता है। इस प्रकार स्थायी लोक अदालतें दंडात्मक न्याय की बजाय उपचारात्मक न्याय को बढ़ावा देती हैं।

7. न्यायिक विलंब की समस्या और स्थायी लोक अदालतें

भारतीय न्याय प्रणाली की सबसे गंभीर समस्याओं में से एक न्यायिक विलंब है। वर्षों तक लंबित रहने वाले मुकदमे न केवल न्याय की अवधारणा को कमजोर करते हैं, बल्कि आम नागरिक के न्याय व्यवस्था में विश्वास को भी प्रभावित करते हैं। न्याय में देरी कई बार अन्याय का रूप धारण कर लेती है, जिससे विधि के शासन की अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

स्थायी लोक अदालतें इस समस्या का एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती हैं। इनके माध्यम से विवादों का शीघ्र निस्तारण संभव होता है और न्यायालयों पर लंबित मामलों का बोझ कम किया जा सकता है। इस प्रकार स्थायी लोक अदालतें 'देर से किया गया न्याय न्याय नहीं होता' के सिद्धांत को साकार करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

8. स्थायी लोक अदालतों को संवैधानिक एवं न्यायिक मान्यता

स्थायी लोक अदालतों की वैधता और प्रासंगिकता को भारतीय संविधान के मूल सिद्धांतों से स्पष्ट समर्थन प्राप्त है। संविधान का अनुच्छेद 14 समानता के अधिकार को सुनिश्चित करता है, जबकि अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अंतर्गत त्वरित एवं प्रभावी न्याय को समाहित करता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39-क राज्य पर यह दायित्व डालता है कि वह विधिक प्रणाली को इस प्रकार व्यवस्थित करे जिससे न्याय तक समान पहुँच सुनिश्चित हो सके। स्थायी लोक अदालतें इन संवैधानिक प्रावधानों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती हैं।

न्यायपालिका ने भी समय-समय पर लोक अदालतों और स्थायी लोक अदालतों की उपयोगिता को स्वीकार किया है। न्यायालयों ने यह माना है कि ये संस्थाएँ औपचारिक न्यायालयों का विकल्प नहीं, बल्कि उनकी पूरक हैं और न्यायिक तंत्र को अधिक

मानवीय, सुलभ और प्रभावी बनाती हैं। इस प्रकार स्थायी लोक अदालतें न केवल वैधानिक बल्कि संवैधानिक संरक्षण भी प्राप्त करती हैं।

9. स्थायी लोक अदालतों की कार्यप्रणाली का विश्लेषण

स्थायी लोक अदालतों की कार्यप्रणाली पारंपरिक न्यायालयों से भिन्न और अधिक लचीली होती है। यहाँ प्रक्रिया सरल, अनौपचारिक और तकनीकी जटिलताओं से मुक्त होती है, जिससे आम नागरिक बिना किसी भय या संकोच के अपने विवाद प्रस्तुत कर सकता है। न्यायिक वातावरण अपेक्षाकृत अनौपचारिक होने के कारण पक्षकार स्वयं को अधिक सहज अनुभव करते हैं।

सुलह-समझौते का प्रयास स्थायी लोक अदालतों की प्रक्रिया का प्रथम और अनिवार्य चरण होता है। यदि सुलह सफल हो जाती है, तो विवाद का निस्तारण आपसी सहमति से हो जाता है। यदि सुलह असफल रहती है, तो स्थायी लोक अदालत को यह अधिकार प्राप्त है कि वह विवाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर करे। यह द्विस्तरीय प्रक्रिया इन्हें अधिक प्रभावी और व्यावहारिक बनाती है।

10. स्थायी लोक अदालतों की सामाजिक प्रासंगिकता

स्थायी लोक अदालतों की सामाजिक प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि ये न्याय को आम जनता के निकट लाती हैं। ग्रामीण, अर्ध-शहरी और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए न्यायालयों तक पहुँच एक कठिन कार्य होता है। स्थायी लोक अदालतें इस दूरी को कम करती हैं और न्याय को अधिक सुलभ बनाती हैं।

इसके अतिरिक्त ये अदालतें सामाजिक सौहार्द को बनाए रखने में भी सहायक होती हैं। सुलह-समझौते के माध्यम से विवादों का समाधान होने से शत्रुता और वैमनस्य की भावना समाप्त होती है। इस प्रकार स्थायी लोक अदालतें केवल विधिक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी सुदृढ़ करती हैं।

11. व्यावहारिक चुनौतियाँ और वर्तमान स्थिति

यद्यपि स्थायी लोक अदालतों की अवधारणा अत्यंत उपयोगी है, तथापि व्यवहार में इन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कई स्थानों पर इन अदालतों की संख्या अपर्याप्त है, जिससे इनके उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षित कार्मिकों और विशेषज्ञ सदस्यों की कमी भी एक गंभीर समस्या है।

अनेक मामलों में स्थायी लोक अदालतों के प्रति जन-जागरूकता का अभाव देखा जाता है। आम नागरिक इनके अधिकार क्षेत्र और कार्यप्रणाली से अनभिज्ञ रहता है, जिसके परिणामस्वरूप वह इन संस्थाओं का लाभ नहीं उठा पाता। यह स्थिति इस बात का संकेत देती है कि केवल विधिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि प्रभावी क्रियान्वयन भी आवश्यक है।

12. संसाधन और अवसंरचना विस्तार की आवश्यकता

स्थायी लोक अदालतों को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त संसाधन और मजबूत अवसंरचना अनिवार्य है। वर्तमान में कई स्थायी लोक अदालतें सीमित भौतिक सुविधाओं और अपर्याप्त वित्तीय समर्थन के साथ कार्य कर रही हैं। यह स्थिति इनके कार्यक्षमता और प्रभावशीलता को प्रभावित करती है।

यदि स्थायी लोक अदालतों को पर्याप्त भवन, तकनीकी सुविधाएँ, प्रशिक्षित कर्मचारी और वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ, तो ये न्याय वितरण की प्रक्रिया में और अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। अवसंरचना का सुदृढ़ीकरण न्यायिक सुधारों की दिशा में एक आवश्यक कदम है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

13. स्थायी लोक अदालतों को कमजोर करने की प्रवृत्ति का समालोचनात्मक विश्लेषण

हाल के वर्षों में यह प्रवृत्ति देखी गई है कि कुछ नीतिगत और प्रशासनिक निर्णयों के माध्यम से स्थायी लोक अदालतों की भूमिका को सीमित करने का प्रयास किया जा रहा है। यह दृष्टिकोण न केवल विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की भावना के विपरीत है, बल्कि न्यायिक सुधारों की प्रक्रिया को भी बाधित करता है।

स्थायी लोक अदालतों को कमजोर करने के बजाय उन्हें और अधिक सशक्त बनाने की आवश्यकता है। यदि इन संस्थाओं को पर्याप्त समर्थन नहीं दिया गया, तो यह न्यायिक विलंब की समस्या को और गंभीर बना सकता है। अतः नीति-निर्माताओं को इस तथ्य को समझना चाहिए कि स्थायी लोक अदालतें न्यायिक व्यवस्था का बोझ कम करने का एक प्रभावी साधन हैं।

14. स्थायी लोक अदालतों के सुदृढ़ीकरण हेतु सुझाव

स्थायी लोक अदालतों के सुदृढ़ीकरण के लिए बहुआयामी प्रयास आवश्यक हैं। सर्वप्रथम इन अदालतों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ लोक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवाद अधिक उत्पन्न होते हैं। इसके साथ-साथ न्यायिक अधिकारियों और सदस्यों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

जन-जागरूकता अभियानों के माध्यम से आम नागरिक को स्थायी लोक अदालतों के लाभों से अवगत कराना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त तकनीकी संसाधनों का उपयोग कर इन अदालतों की कार्यप्रणाली को अधिक पारदर्शी और दक्ष बनाया जा सकता है। इन उपायों से स्थायी लोक अदालतें न्यायिक सुधारों का एक सशक्त माध्यम बन सकती हैं।

15. निष्कर्ष

स्थायी लोक अदालतें भारतीय न्याय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण और अपरिहार्य भूमिका निभाती हैं। ये न केवल न्यायिक विलंब की समस्या का समाधान प्रस्तुत करती हैं, बल्कि न्याय को अधिक सुलभ, किफायती और मानवीय भी बनाती हैं। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत स्थापित यह संस्थाएँ संविधान के सामाजिक न्याय के आदर्शों को व्यवहार में उतारने का प्रभावी माध्यम हैं।

अतः यह आवश्यक है कि स्थायी लोक अदालतों को कमजोर करने के बजाय उन्हें और अधिक सुदृढ़ किया जाए। पर्याप्त संसाधन, बेहतर अवसंरचना और संस्थागत समर्थन प्रदान कर इन्हें न्याय वितरण की प्रक्रिया का एक केंद्रीय स्तंभ बनाया जाना चाहिए। तभी यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि न्याय केवल सिद्धांत तक सीमित न रहे, बल्कि प्रत्येक नागरिक तक समय पर और प्रभावी रूप से पहुँचे।

संदर्भ सूची

1.भारत का संविधान, भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय, नई दिल्ली।

2.विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987, भारत सरकार, राजपत्र प्रकाशन।

3.अवतार सिंह, भारतीय विधि प्रणाली, ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ।

4.एम. पी. जैन, भारतीय संवैधानिक विधि, हिंदी अनुवाद, वधवा एंड कंपनी, नागपुर।

5.एस. एन. मिश्र, वैकल्पिक विवाद निस्तारण, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

6.न्यायमूर्ति आर. एस. पाठक, न्यायिक प्रक्रिया और सामाजिक न्याय, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, दिल्ली।

7.डॉ. कैलाश राय, लोक अदालत और न्यायिक सुधार, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, प्रयागराज।

8.विधि आयोग, भारत में न्यायिक सुधारों पर रिपोर्ट, भारत सरकार, नई दिल्ली।

9.राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा), लोक अदालत एवं स्थायी लोक अदालत मार्गदर्शिका, नई दिल्ली।

10.सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, लोक अदालतों की भूमिका पर न्यायिक दृष्टिकोण, सुप्रीम कोर्ट जजमेंट्स (हिंदी संस्करण)।

11.डॉ. बी. के. माटे, न्यायिक प्रशासन एवं वैकल्पिक विवाद समाधान, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

12.डॉ. रामबाबू शर्मा, सामाजिक न्याय और भारतीय संविधान, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

13.न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती, न्याय तक पहुँच और लोकहित याचिका, हिंदी अनुवाद, यूनिवर्सल पब्लिकेशन।

14.यू. बी. सिंह, विधिक सहायता और लोक अदालतें, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद।

15.लोक अदालत और न्यायिक लोकतंत्रीकरण, भारतीय विधि अध्ययन पत्रिका, विशेषांक (हिंदी)।

16.विधि एवं न्याय मंत्रालय, विधिक सेवा योजनाएँ एवं कार्यान्वयन रिपोर्ट, भारत सरकार।

17.डॉ. सुरेश चंद्र, भारतीय न्याय व्यवस्था: चुनौतियाँ और समाधान, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

18.स्थायी लोक अदालत: अवधारणा और व्यवहार, जर्नल ऑफ इंडियन लॉ (हिंदी खंड)।

19.राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, स्थायी लोक अदालतों की वार्षिक रिपोर्ट, संबंधित राज्य सरकार।

20.डॉ. आर. के. पांडेय, न्यायिक विलंब और वैकल्पिक विवाद निस्तारण, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, प्रयागराज।